

अध्याय : चतुर्थ

शैक्षिक विचारधारा

शिक्षा का शब्दिक अर्थ

शिक्षा शब्द संस्कृत की शिक्षा धातु से बना है जिसका अर्थ है सीखना और सिखाना। शिक्षण शब्द अध्यापन के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है, किन्तु अपने मूल अर्थ में यह सीखना तथा सिखाना दोनों हैं शिक्षा शब्द में ही दोनों भाव निहित हैं। सीखाने के अर्थ में प्रायः शिक्षा प्राप्त करना और सिखाने के अर्थ में शिक्षा प्रदान करना पदबन्ध प्रयुक्त होते हैं। शिक्षा का अंग्रेजी प्रयोग एजुकेशन लैटिन भाषा के एजुकेटम में दो शब्द है 'ए' तथा डूकों। ए का अर्थ अन्दर से और डूकों का अर्थ बाहर लाना। इस प्रकार पहली व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ हुआ अन्दर से बाहर लाना।'

शिक्षा का अर्थ होता है अन्ततः व्यक्ति के आन्तरिक गुणों को जागृत करना या बाहर लाना।

जे. कृष्णमूर्ति जी की वैचारिकी शिक्षाएँ किसी देश-काल या परिस्थितियों से आब(न होकर सार्वभौम हैं। विश्व के समस्त मानव एक जैसे हैं उनकी समस्यायें भी एक जैसी है। कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि— "मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है लोगों को उस मुक्ति और आनन्द को प्राप्त करने में सहायता करना, जिन्हें मैं स्वयं प्राप्त कर चुका हूँ और जो सम्पूर्ण मानवता के लिए अंतिम लक्ष्य है।"

अपनी शिक्षाओं के सम्बन्ध में वे कहते हैं— 'मेरी शिक्षाएं न रहस्यपूर्ण हैं न गुह्य हैं, क्योंकि मेरी समझ में रहस्यवाद एवं गुह्य विद्या दोनों ही मनुष्य द्वारा सत्य पर सीमाओं के आरोपण हैं। धार्मिक मतों विश्वासों से जीवन कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। आप जीवन को विश्वास, परम्परा व प्रमाण्य से मुक्त कर दें, परन्तु जो लोग इन चीजों से बंधे हैं उन्हें सत्य को समझने में कठिनाई होगी।'

जे. कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन में न तो कोई कल्पना है न ही किन्हीं सिद्धान्तों की व्याख्या ही। आपके अनुसार उन विचारों के अनुरूप बच्चों को शिक्षित किया जाय तो निश्चित रूप से एक नूतन संस्कृति, नूतन विषय का निर्माण हो सकता है।

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार पुस्तकों से सीखना व बच्चों का विषय-वस्तु कंठस्थ करना ही शिक्षा नहीं है। यह सीखना भी शिक्षा है कि अवलोकन कैसे किया जाय। पुस्तकें क्या कह रही हैं सुना जाय, सच कह रही है अथवा झूठ। तमाम प्राचीन मूल्यों को बिना सोचे समझे स्वीकार कर लेना शिक्षा नहीं है। वास्तविक शिक्षा पर प्रकाश डालते हुए कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि— “विचार करना, निरीक्षण करना, सीखना आरम्भ करें— पुस्तकों से नहीं वरन् स्वयं विश्व में जो चारों-ओर हो रहा है उसे देखकर, उसे सुनकर, तो आप ऐसे दूसरे प्रकार के मनुष्य बन सकते हैं जो सतर्क हैं जिसमें स्नेह है, जो लोगों से प्रेम करता है।”

जीवन को समग्र रूप में समझ लेना ही शिक्षा की इतिश्री है।

कृष्णमूर्ति जी कहते हैं—

“जीवन को समझने का अर्थ अपने को समझना है और यही शिक्षा का आरम्भ अंत दोनो हैं।”

आदर्शों पर कुठाराघात करते हुए कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि— “आदर्शों का शिक्षा में कोई स्थान नहीं है क्योंकि वे वर्तमान के अवबोध में बाधक हैं जो वास्तविकता है उसके प्रति निःसंदेह हम तभी जागरुक हो सकते हैं, जब हम भविष्य में पलायन नहीं करते। भविष्य की ओर देखना, किसी आदर्श के लिए संघर्षशील होना इसका सूचक है कि हम वर्तमान से बचना चाहते हैं तथा हमारा स्फूर्ति-विहीन है।”

विश्वासों हठधर्मों तथा मताग्रहों पर प्रहार करते हुए आपका कहना है— “शाश्वत सत्य की उपलब्धि के लिए यह आवश्यक है कि आप न केवल अपने विश्वासों हठधर्मों मताग्रहों को बल्कि सत्य की अपनी अधकचरी समझ को तथा कायरता और भय से उत्पन्न

सत्य की अपनी झलक को भी एक किनारे रख दें। उन चीजों की पूजा न करने लग जायें जो सत्य और आपके बीच खड़ी हैं।”

कृष्णमूर्ति जी का जीवन अपनी शिक्षाओं के लिए पूरी तरह समर्पित रहा। उनकी शिक्षाएँ सभी के लिए बालक, वृद्ध, किशोर, प्रौढ़, गृहस्थियों व संन्यासियों सभी के लिए सत्य को जानने की सभी को अभिप्सा रहती है।

कृष्णमूर्ति जी के हृदय में मानवता के लिए अपार करुणा रही, इसलिए वे बार-बार कहते थे कि— “मेरा कार्य लोगों को बिना तर्क मुक्त कराना है इसी करुणा के कारण वे भारत, इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की स्थापना करके विश्व भर में अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की थी। उनकी इच्छा थी कि उनके जीवनकाल के बाद भी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार होता रहे।”

कृष्णमूर्ति जी प्रकृति से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होंने प्रकृति से उदाहरण लेकर शिक्षा ग्रहण करने की बात कही है।

जे.कृष्णमूर्ति के अनुसार— “शुष्क भूमि पर पानी का बरसना एक अद्भूत चीज है? वह पत्तों को धो डालती है, धरती तरोताजा बनाती है और बारिश से जैसे वृक्ष धूल गये, वैसे ही मुझे लगता है हम सबको भी अपने अपने मन को पूरी तरह धोकर स्वच्छ निर्मल करना चाहिए क्योंकि हमारे मन अनेक सतहों की धूल से जिसे हम ज्ञान अनुभव कहते हैं, उनसे बोझिल रहते हैं। यदि आप और मैं हर रोज अपने मन को निर्मल करेंगे, बीते कल की स्मृतियों से मुक्त करेंगे, तो हममे से हर एक का मन ताजा रहेगा और ऐसे ताजे, नित्य नये मन में हमारे जीवन की असंख्य समस्याओं को सुलझाने की योग्यता आयेगी।”

स्कूल के बच्चों से बात करते समय एक बार जे. कृष्णमूर्ति जी ने यह कहा था कि जीवन के प्रारम्भ से ही हमारा मन शुद्ध (ताजा और स्वच्छ हो और यह हम किससे सीखेंगे? वर्षा से, वृक्ष के पत्तों से, धरती से। जे. कृष्णमूर्ति की दृष्टि में सृष्टि ही उत्तम शिक्षक थी,

वहीं सबसे आसान किताब थी। जब वे बच्चों से बात करते तब प्रकृति के नये-नये रूप दिखाते, समझाते रहते थे।

एक बार आपने कहा, जीवन नदी के समान है। नदी से व्यक्ति को शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। नदी बहती रहती है, बदलती रहती है और इसलिए स्वच्छ, पारदर्शी रहती है। गड्ढे में जमा हुआ पानी गन्दा होता है, सड़ने लगता है। हमारा मन भी स्मृतियों के कीचड़ में धंसा रहेगा, तो उसकी भी दुर्गति ही होगी। आकाश के तारे से लेकर बगीचे के फूल तितलियों और पंक्षियों की बातें, वे बच्चों से करते। सृष्टि की जीवन्त किताब उन्हें अपनी प्रिय थी। बचपने में उन्हें स्कूल से भी अधिक इसी किताब ने सिखाया और सभी बच्चों का मौका मिले, ऐसा वे चाहते थे। पृथ्वी सुन्दर है और जितना अधिक तुम उसके प्रति सहज होती हो उतनी ही अधिक वह सुन्दर है। रंग हरियाली और पीलेपन की विविधता। जब तक कोई व्यक्ति पृथ्वी के साथ एकाकी होता है तो उसे जो पता लगता है, वह आश्चर्यजनक है। न केवल कीट पतंग, पक्षी, घास, विभिन्न प्रकार के फूल, चट्टान, रंग और वृक्ष बल्कि विचार भी यदि कोई उन्हें प्रेम करता है। हम किसी चीज के साथ एकाकी नहीं होते। न अपने साथ और न पृथ्वी के साथ। किसी आकांक्षा के साथ एकाकी होना आसान है, इच्छाशक्ति की किसी क्रिया द्वारा उसका विरोध करना नहीं, उसके समर्थन या उसकी निन्दा द्वारा उसके विपरीत का निर्माण करना नहीं, बल्कि उसके साथ एकाकी होना।

यह एक अद्भुत अवस्था को उत्पन्न करता है, बिना इच्छाशक्ति की किसी क्रिया द्वारा क्योंकि यही चीज विरोध और द्वन्द्व पैदा करती है। किसी आकांक्षा के साथ एकाकी होना ही उस आकांक्षा में एक रूपान्तरण ले आता है। उसके साथ खेलों और देखों कि क्या होता है और किसी चीज का दबाव मत डालो बल्कि सहजता से इस पर सोचो-विचारो, कृष्णमूर्ति जी का ऐसा विचार है।

आपने पर्वत के बारे में कहा है पर्वत एकाकी ही हो सकते हैं। पर्वतों पर वर्षा बड़ी ही प्यारी चीज है। वर्षा की बूँदे झील की शान्त सतह पर गिरती हैं। जब वर्षा होती है तो पृथ्वी से किस तरह गन्ध उठती है और तब बहुत सारे मेढ़क भी टराने लगते हैं। उष्णकटिबन्धी देशों ;ट्रॉपिक्सद्ध में जब वर्षा होती है तो वहाँ एक विलक्षण मोहक वातावरण होता है। हर चीज धुल कर साफ हो जाती है, पेड़ पत्तों पर जमी धूल धुल जाती है। नदियाँ पुनः जीवित हो जाती हैं और बहते हुए जल का शोर सुनाई पड़ने लगता है। पेड़ों से हरी टहनियों और कौपले बाहर निकल आती हैं, जहाँ बंजर भूमि थी वहाँ नई जंगली घास उग जाती है, हजारों की संख्या में कीड़े-मकोड़े पता नहीं कहाँ से चले आते हैं, सुखी-तृप्त धरती की प्यास बूझ जाती है और पृथ्वी संतुष्ट एवं शान्त प्रतीत होती है। सूरज की किरणों से तीखापन चला गया सा लगता है और पृथ्वी हरी-भरी हो जाती है और वह सुन्दरता एवं समृद्धि की एक जगह बन जाती है। मनुष्य तो अपने दुःखों का निर्माण किये चला जाता है परन्तु पृथ्वी एक पुनः समृद्धि है और उसकी हवाओं में जादू सा असर करने वाला एक गुण आ जाता है। इन सभी घटनाओं से मनुष्य को शिक्षा लेनी चाहिए।

यह विचित्र बात है कि इतने सारे लोग सम्मान और प्रशंसा चाहते हैं— एक महान कवि या दार्शनिक के रूप में सम्मानित होना, यानी कोई ऐसी चीज जो व्यक्ति के अहंकार को बढ़ाती हो, यह अत्यधिक तुष्टि देता है लेकिन इसका कोई खास मतलब नहीं है। सम्मान पोषण देता है। मनुष्य के मिथ्याभिमान को और शायद उसकी जेब को भी और तब उसके बात क्या? वह एक व्यक्ति को अलग कर देता है और यह अलगाव फिर समस्या पैदा कर देता है, जो बढ़ता ही चला जाता है। हाँलाकि सम्मान तुष्टि दे सकता है पर यह अपने आप में एक साध्य नहीं है। लेकिन अधिकांश लोग सम्मानित होते हैं, परितुष्ट होने और उपलब्ध करने की लालसा में ही उलझे हुए हैं और तब असफलता अवश्यम्भावी है तथा उनके साथ आने वाली दुख-तकलीफ भी। सफलता और असफलता दोनों से मुक्त होना ही यथार्थ चीज है। शुरु से ही किसी परिणाम की खोज नहीं करना, वही चीज करना

जिसे करने मात्र से प्रेम हो और प्रेम का कोई पुरस्कार या दण्ड नहीं होता। यदि प्रेम है तो यह वस्तुतः एक सरल चीज है।

जे.कृष्णमूर्ति प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के अवलोकन और उससे सीखने को महत्व देते हैं। आपके अनुसार भौतिकता की अंधी दौड़ निरर्थक है।

हम अपने आस-पास की चीजों की ओर कितना कम ध्यान देते हैं अर्थात् उनका अवलोकन करना और उन गम्भीरता से सोचना-विचारना। हम इतने स्वकेन्द्रित हैं तथा हम अपनी चिन्ताओं, अपने हितों और लाभों के साथ इतने व्यक्त हैं कि अवलोकन करने और समझने के लिए हमारे पास समय ही नहीं है और दुःखों से हम पलायन करना चाहते हैं। जब तक 'मैं' सक्रिय है तब तक यह थका देने वाली संवेदन शून्यता और कुण्ठा रहेगी ही। लोग पागलपन की एक दौड़ में तथा स्वकेन्द्रित विवाद के दुःख में फँसे हैं। यह दुःख वस्तुतः गहरी विचारहीनता है। विचारहीनता और जागरुक लोग दुःख से युक्त होते हैं।

शिक्षा, हम इससे क्या समझते हैं। हम पढ़ना और लिखना सीखते हैं, जीविका के लिए आवश्यक तकनीक प्राप्त करते हैं, और तब हम संसार में स्वतंत्र छोड़ दिये जाते हैं। बचपन से ही हमें बताया जाता है कि हम क्या करें, क्या सोचें, अतः आन्तरिक रूप से हम समाज और परिवेश के प्रभाव द्वारा गहरे रूप में संस्कारब(है। मैं सोच रहा था, क्या यह सम्भव है कि मनुष्य को बाह्य स्तर पर भी शिक्षित करें परन्तु उसके केन्द्र को स्वतंत्र छोड़ दें। क्या हम मनुष्य की सहायता कर सकते हैं ताकि वह आन्तरिक रूप से स्वतंत्र हो जाने तथा सदा स्वतंत्र रहे, क्योंकि स्वतंत्रता से ही सृजनात्मकता है और इसीलिए वह सुखी हो सकता है अन्यथा जीवन एक अत्यन्त पेचीदा मामला है—भीतर का एक संग्राम और इसलिए बाहर का भी। लेकिन आन्तरिक रूप से स्वतंत्र होने के लिए आश्चर्यजनक सावधानी और प्रज्ञा चाहिए परन्तु थोड़े से लोग ही इसके महत्व को देखते हैं। हमारा लगाव बाह्य से ही है सृजनात्मकता से नहीं। लेकिन हम सबको बदलने के लिए कम से कम कुछ लोग

ऐसे जरूर होने चाहिए जो इसकी आवश्यकता को समझते हैं, जो स्वयं अपने भीतर इस स्वतंत्रता को जन्म दे रहे हैं। यह एक विलक्षण जगत है।

जो चीज महत्वपूर्ण है वह है अचेतन में एक आमूल परिवर्तन। इच्छाशक्ति की कोई भी चेतन-क्रिया अचेतन को नहीं छू सकती। जैसा कि चेतन इच्छाशक्ति अचेतन लक्ष्यों, आकांक्षाओं और प्रेरणाओं को नहीं छू सकती, चेतन मन और अवश्य ही शान्त और निश्चल हो जाना चाहिए तथा किसी विशेष क्रिया प(ति के अनुसार अचेतन को बाध्य करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अचेतन की एक अपनी क्रिया प(ति के अनुसार अचेतन को बाध्य करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अचेतन की एक अपनी क्रिया प(ति होती है, एक अपना ढांचा होता है, जिसके भीतर यह कार्य होता है। यह ढांचे को किसी बाहरी कृत्य द्वारा नहीं तोड़ा जा सकता है और इच्छाशक्ति एक बाहरी कृत्य है। यदि यह वस्तुतः देख और समझ लिया जाय तो बाहरी मन शान्त हो जाता है और चूँकि इच्छाशक्ति द्वारा खड़ा किया गया कोई विरोध वहाँ नहीं होता इसलिए हम पाते हैं कि तथाकथित अचेतन स्वयं को अपनी सीमाओं से मुक्त करने लगता है। तभी मनुष्य के समग्र अस्तित्व में एक आमूल रूपान्तरण होता है।

जे कृष्णमूर्ति जी ने नदी से शिक्षा लेने की बात कही नदी कितनी प्यारी है। एक समु(, विशाल बहती हुई नदी के बिना कोई देश वस्तुतः देश है ही नहीं। एक नदी के किनारे बैठना तथा बहते हुए जल को देखना, मन्द लहरों को ध्यान से देखना तथा किनारों से टकराती हुई लहरों की छप-छप को सुननाऋ जल की सतह हवाओ द्वारा आकृति बननाऋ अबाबील का जल को स्पर्श करना, कीट, पतंगों का जल में फँस जानाऋ और बहुत दूर नदी के जल के उस पार, नदी के दूसरे किनारे पर लोगों की आवाजें या किसी दिन सन्ध्या में नीरवता में एक बालक की बाँसुरी का स्वर— वह हमारे भीतर और बाहर के सारे शोरगुल को शान्त कर देता है। ऐसा लगता है कि जल किसी न किसी प्रकार, शु(और पवित्र कर देता है, बीते हुए कल की स्मृतियों को वह धो डालता है तथा हमारे मन

को वह अपनी पवित्रता की गुणवत्ता प्रदान करता है— जैसा कि जल अपने आप में पवित्र होता है। एक नदी सब ग्रहण कर लेती है— गन्दे नाले लाशें अपने किनारे पर बसे शहरों की गंदगी, और फिर भी वह कुछ ही मीलों के अन्दर जाकर अपने आपको साफ कर लेती है, वह सब कुछ ग्रहण कर लेती है और स्वयं की बनी रहती है, शु(और अशु(की परवाह किये बिना और उनकी भिन्नता को जाने बिना। वह तो तालाब और छोटे-छोटे डबरे होते हैं जो जल्दी ही दूषित हो जाते हैं, क्योंकि वे बहते हुए और जीवित नहीं होते, जैसे विशाल और सुगन्धित बहती हुई नदियाँ होती हैं। हमारा मन एक छोटा सा तालाब ही है जो मूल्यांकन करता है माप-तौल एवं विश्लेषण करता है और फिर भी यह उत्तरदायित्व का एक छोटा सा डबरा बना रहता है।

जे कृष्णमूर्ति के अनुसार विचार की एक जड़ होती है या जड़े होती है। विचार स्वयं ही जड़ है। प्रतिक्रिया तो होगी ही अन्यथा उसका अर्थ मृत्यु है लेकिन समस्या यह है कि वह प्रतिक्रिया अपनी जड़ के वर्तमान समय में या भविष्य में न फैलाये विचार तो उठेगा ही, परन्तु उसके प्रति सजग होना और तत्काल अन्त कर लेना अति आवश्यक है। विचार के बारे में सोचना, उसके परखना, उसके साथ खेलना — इन सबका अर्थ है विचार को विस्तार देना को विस्तार देना। यह समझ लेना सचमुच महत्वपूर्ण है। मन विचार के बारे में कैसे सोचता है। यह देखना तथ्य के प्रति प्रतिक्रिया करना है। यह प्रतिक्रिया या कुछ और हो सकती है। उदास अनुभव करने लगना, भविष्य में होने वाले प्रतिलाभ के बारे में सोचने का अनिश्चितता की भूमि में जड़ें जगाना।

सचमुच एकाकी होना, बीते हुए कल की स्मृतियों और समस्याओं के साथ नहीं बल्कि एकाकी और आनन्दित होना, बिना किसी वाह्य आंतरिक बाध्यता के एकाकी होना — इनका अर्थ है मन को हस्तक्षेप से मुक्त रहने देना, एकाकी होना। एक वृक्ष के प्रति प्रेम की गुणवत्ता रखना — संरक्षात्मक और फिर भी एकाकी। हम वृक्षों के प्रति प्रेम संवेदना खोज रहे हैं। यदि हम प्रकृति से प्रेम नहीं कर सकते तो मनुष्य से भी प्रेम नहीं कर सकते,

हमारा ईश्वर अत्यन्त छोटा और क्षुद्र हो गया है और वैसा ही है हमारा प्रेम भी। सामान्यता में ही सीमित है हमारा अस्तित्व, परन्तु दूसरी ओर है खुला आकाश, वृक्ष और पृथ्वी का अनन्त ऐश्वर्य।

जे० कृष्णमूर्ति के अनुसार स्वयं को सरल और साफ रखना सदा कठिन है। संसार सफलता की पूजा करता है, सफलता जितनी बड़ी हो उतना ही अच्छा ऋश्रोताओं की संख्या जितनी बड़ी हो उतना ही बड़ा वक्ता ऋ बड़े मकान, बड़ी कार, बड़ा हवाई जहाज और बड़े लोग, सरलता तो लुप्त हो जाती है। सफल वे लोग नहीं हैं जो एक विश्व का निर्माण कर रहे हैं। एक सच्चा क्रान्तिकारी होने के लिए जो चीज जरूरी है, वह है हृदय और मन का पूर्ण परिवर्तन और वस्तुतः कितने थोड़े से लोग ही स्वयं को मुक्त करना चाहते हैं। आदमी सतह पर की जड़ों को ही काटता रहता है, लेकिन सफलता और सामान्यता को पोषण देने वाली गहरी जड़ों को काटने के लिए शब्द, दबाव और प(तियाँ काफी नहीं। ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो वास्तविक निर्माणकर्त्ता हैं— बाकी लोग तो व्यर्थ का श्रम कर रहे हैं, व्यक्ति सदा अपनी तुलना करता रहता है दूसरे के साथ, ऐसे व्यक्ति के साथ जो अधिक सौभाग्यशाली है, अथवा वह स्वयं अभी जो हैं और जो उसे होना चाहिए, उनके बीच वह तुलना करता रहता है, यह तुलना सचमुच उसे मार डालती है। तुलना वस्तुतः अपमानजनक है, वह व्यक्ति की दृष्टि को विकृत कर देती है। तुलना के ही वातावरण में व्यक्ति का पालन पोषण होता है। हमारी सारी शिक्षा उसी पर आधारित है और उसी प्रकार संस्कृति भी। अतः व्यक्ति जो है, उससे अलग कुछ और होने के लिए अनवरत संघर्ष करता है। जो हम हैं उसकी वास्तविक समझ सर्जनात्मकता को अपने आप प्रकट करती है, लेकिन तुलना वस्तुतः प्रतिस्पर्धा निष्ठुरता और महत्वाकांक्षा को जन्म देती है और हमें लगता है कि यही चीजें प्रगति लाती हैं। यह प्रगति अब तक हमें जितने भयावह यु(ों और दुःखों की ओर ले गयी है, वैसी संसार में पहले कभी नहीं हुआ था। बिना किसी तुलना के बच्चों को पालन—पोषण करना ही सच्ची शिक्षा है।

आपके अनुसार शिक्षा सीखने की एक कला है, न केवल किताबों से बल्कि जीवन की समस्त गति से। हम वही सीखते हैं, जो दूसरे लोग सोचते विचारते हैं— उनके मत, उनके मूल्य, उनकी राय और मान्यतायें एवं उनके असंख्य विविध अनुभव। पुस्तकालय उस व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जो उस पुस्तकालय का मालिक है, बल्कि अतंतः व व्यक्ति स्वयं एक पुस्तकालय बन जाता है और वह मान लेता है कि निरंतर अध्ययन द्वारा वह सीख रहा है।

एक कम्प्यूटर की तरह जो दिमाग निरन्तर जानकारी संग्रह करने में लगा है उसे शिक्षित और सुविज्ञ माना जाता है।

कृष्णमूर्ति जी ने शब्दों को शिक्षा सीखने का सार नहीं माना है। बुद्धि का स्वरूप, इसका प्रभुत्व, इसकी गतिविधि, इसकी अपार क्षमतायें और विनाशकारी शक्ति— प्रभुत्व इन सब के बारे में सीखना शिक्षा है। विचार, जो बुद्धि की ही गति है, उसके स्वरूप के बारे में सीखना—समझना किसी किताब से नहीं बल्कि अपने आस-पास के जगत के अवलोकन से अर्थात् जो सही—सही घटित हो रहा है, उसके सिद्धान्तों, पूर्वाग्रहों, मूल्यों और मान्यताओं से मुक्त होकर सीखना ही शिक्षा है, पुस्तकें महत्वपूर्ण किन्तु सीखने के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है वह आप स्वयं है, स्वयं आपकी कहानी क्योंकि आप ही समस्त मानव जाति हैं। इस पुस्तक को पढ़ना ही सीखने की कला है। और इस पुस्तक में कुछ संग्रहित है— संस्थाएँ, उसके दबाव धार्मिक सिद्धान्त, उनके आरोपण, उनकी आस्थाएँ। किसी भी समाज की सामाजिक संरचना का अर्थ है, मानवों के बीच का सम्बन्ध और इसके साथ ही उनका लोक, उनकी महत्वकांक्षाएँ, उनकी हिंसा, उनके सुख और उनकी चिंताएँ। जिस पुस्तक की हम बात कर रहे हैं, वह न आपके भीतर छिपी है और न कहीं बाहर। यह पुस्तक चारों ओर मौजूद है— आप उस पुस्तक के एक हिस्से हैं। यह पुस्तक, आपके मानव की कहानी कहती है, जिसे आप अपने परस्पर सम्बन्धों, में अपनी प्रतिक्रियाओं में, अपनी धारणाओं और मान्यताओं में पढ़ सकते हैं। यह पुस्तक आपके अस्तित्व का केन्द्र है और

सीखने का अर्थ है इस पुस्तक को अतिशय सावधानी के साथ पढ़ना। यह पुस्तक आपसे अतीत की कहानी कहती है— किस प्रकार अतीत आपके मन, हृदय और संवेदन को आकार देता है। अतीत वर्तमान की रूपरेखा निर्धारित करता है और समय की इस अनृहीन गति में मानव जकड़ा हुआ है। यह मनुष्य की संस्कारब(ता है।

दार्शनिक, धर्मशास्त्रियों और साधु—सन्तों ने इस संस्कारब(ता को स्वयं तो स्वीकार कर ही लिया है, दूसरों के लिए भी उन्होंने इसपर स्वीकृति की मुहर दे दी है और इस प्रकार उन्होंने स्वयं को इसके अनुकूल बना लिया है, इनमें से कुछ लोगों ने कल्पित स्वयं, ईश्वर और गूढ़ अनुभूतियों की भांतियों में पलायन करने का मार्ग दिखाया है। शिक्षा एक कला है— इस संस्कारब(ता के इस बोझ से मुक्त होने की। संस्कारब(ता के इस जाल से बाहर आने का एक मार्ग है, जो एक पलायन नहीं है— जो चीजों को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करता। यह मार्ग संस्कारब(ता का विघटन और विलोपन है।

कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि शिक्षा का कार्य यह नहीं है कि समग्र क्रान्ति लाने में वह मनुष्य की सहायता करें? हमसे अधिकंश आंशिक क्रान्ति के बारे में सोचते हैं चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक परन्तु जिस क्रान्ति की बात है वह हर स्तर पर, मनुष्य की चेतना, उसके जीवन और अस्तित्व में होने वाली सम्पूर्ण क्रान्ति है। पर उसके लिए बहुत गहरी समझ का होना आवश्यक है। यह किसी सिद्धान्त या विचार—प(ति का परिणाम नहीं होती है। इसके विपरीत, किसी भी वैज्ञानिक संरचना, के दायरे में कोई क्रान्ति घटित नहीं हो सकती है। यह संरचना अपना एक विशिष्ट प्रभाव तो छोड़ सकती है, पर वह प्रभाव क्रान्ति नहीं है। परन्तु आज जिस क्रान्ति की आवश्यकता है, वह केवल तब संभव है, जब मनुष्य का मन जिस रीति से कार्य रहा है, उसकी पूरी समझ हममें हो, और यह समझ किसी धर्म विशेष या किसी विशेष दार्शनिक सि(न्त जैसे मार्क्सवाद से या किसी व्यवस्था विशेष जैसे पूँजीवाद से नहीं ओ सकती। तात्पर्य यह है कि जब एक सम्पूर्ण प्रक्रिया के

रूप में स्वयं की समझ हममें होगी, तभी क्रांति संभव है। एकमात्र वैसी क्रान्ति ही स्थायी शांति स्थापित कर पाएगी।

आपके अनुसार परम्परागत शिक्षा स्वतंत्र चिन्तन को असंभव बना देती है। अनुकरण औसत दर्जे की मानसिकता पैदा करता है। किसी समूह से भिन्न होना अथवा परिवेश का प्रतिरोध करना सरल नहीं है और जब तक हम सफलता की उपासना में जुटे हैं, यह खतरनाक भी है। सफल होने की उत्कंठा, यानी पुरस्कार पाने की दौड़ में लगे रहना— चाहे वह भौतिक क्षेत्र में हो या तथाकथित आध्यात्मिक क्षेत्र में अर्थात् आंतरिक या वाह्य सुरक्षा की खोज सुख—सुविधाओं की कामना— यह सारी की सारी प्रक्रिया असंतोष को कुंठित करने के साथ—साथ सहजता का अंत कर देती है और भय के बीज बोती है, और भय जीवन को विवेकपूर्ण ढंग से समझने में बाधक बनता है। बढ़ती हुई आयु के साथ मन और हृदय भी स्फूर्तिहीन होने लगते हैं।

आपके अनुसार शिक्षा का अर्थ है कि वह किसी तकनीक के ज्ञान को प्रोत्साहित करने के साथ—साथ कुछ ऐसा काम करें, जो कहीं अधिक महत्वपूर्ण है और यानी वह जीवन की अखंड प्रक्रिया का अनुभव करने में भी सहायता करे। यही यह अनुभव है जो क्षमता और तकनीक को उसका उचित स्थान देगा। यदि किसी व्यक्ति के पास वास्तव में अभिव्यक्त करने लायक कुछ है तो उसकी अभिव्यक्ति ही अपने शैली का सृजन कर लेगी और लेकिन आंतरिक अनुभव के अभाव में बस किसी शैली को सीखना हमें केवल एक छिछलेपन की ओर ले जाएगा।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार आदर्शों का शिक्षा में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि वे 'वर्तमान' को समझने में बाधक बनते हैं। जो वास्तविक है, उसके प्रति निस्संदेह हम तभी जागरूक हो सकते हैं, जब हम भविष्य में पलायन नहीं करते। भविष्य की ओर देखने या किसी आदर्श के लिए संघर्षशील होने का मतलब है कि हम वर्तमान से बचना चाहते हैं तथा हमारा मन स्फूर्तिहीन है।

आपके अनुसार शिक्षा का किसी विचार-सि(न्त से लगाव नहीं होता, वह विचार-सि(न्त चाहे जितना भी भविष्य के यूरोपिया को आस जगाए। सही शिक्षा किसी व्यवस्था पर आधारित नहीं होती, चाहे वह व्यवस्था कितनी भी सावधानी से बनाई गई हो। इसी प्रकार उचित शिक्षा, व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार से प्रतिब(करने का माध्यम भी नहीं है। शिक्षा का सही अर्थ व्यक्ति के परिपक्व तथा मुक्त होने में, प्रेम तथा अच्छाई में अधिकाधिक पनपने में सहायता करना है। इसी में हमारी रूचि होनी चाहिए, न कि बच्चे को किन्हीं आदर्शवादी नमूनों के अनुसार ढालने में।

आपके अनुसार उचित प्रकार की शिक्षा अर्थ है— प्रज्ञा को जागृत करना तथा समन्वित जीवन का पोषण करना, और केवल ऐसी ही शिक्षा एक नई संस्कृति एवं शान्तिमय विश्व की स्थापना कर सकेगी, परन्तु इस प्रकार की नई शिक्षा लाने के लिए हमें एकदम नई जमीन पर नए सिरे से कार्य शुरू करना होगा।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जिसमें सहानुभूति तथा प्रेम हो, जिनके हृदय खोखले शब्दों से या मन के कल्पनाओं से भरे न हों तभी बच्चों का विकास बिना किसी पूर्वाग्रह के हो सकेगा, इसके लिए हमें पहले अपने अंदर के सारे पूर्वाग्रहों को तोड़ना पड़ेगा और फिर अपने परिवेश के पूर्वाग्रहों को तोड़ना पड़ेगा जिसका अर्थ होगा कि हमने जिस विचारहीन समाज की रचना की है, उसके ढाँचे को ही ढहा देना। घर में हम बच्चे से भले ही कहें कि वर्ग या जाति का बोध कितना मूर्खतापूर्ण है, और शायद वह समझ भी जाएगाऋ लेकिन हो सकता है कि स्कूल में दूसरे बच्चों के साथ खेलते हुए वह भेदभाव की भावना से दूषित हो जाए या उल्टा भी हो सकता है, घर परम्परावादी तथा संकीर्ण विचारों वाला हो और स्कूल का वातावरण कुछ उदार हो। दोनों ही स्थितियों में घर और स्कूल के वातावरण के बीच निरंतर संघर्ष होता रहेगा तथा बच्चा उन दोनों के बीच पिस जाएगा। ऐसे में बच्चे का सही ढंग से परवरिश के लिए, इन मूर्खतापूर्ण पूर्वाग्रहों को देखने-समझने की दृष्टि, उसमें पैदा करने के लिए, हमें

उसके निकट आना होगा। हमें उससे बातचीत करनी होगी और उसे बुद्धिमानपूर्ण परिचर्चाओं को सुनने का मौका देना होगा। उसमें पहले से ही मौजूद खोजबीन तथा असंतोष की भावना को प्रोत्साहन देना होगा और इस प्रकार सच और झूठ की परख करने में उसकी मदद करनी होगी।

जे. कृष्णमूर्ति जी के अनुसार, सही शिक्षा तभी संभव होगी जब हम मानव जीवन के गहरे तात्पर्य को समझने लगेंगे, परन्तु यह समझने के लिए, मन को पुरस्कार पाने की इच्छा से प्रज्ञापूर्वक मुक्त होना होगा क्योंकि यह इच्छा ही डर और परम्परानुसरण को पैदा करती है, इसलिए शिक्षा का कार्य है, इन मनोवैज्ञानिक बाधाओं के अन्वेषण में प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करना है। सही शिक्षा व्यक्ति की स्वतंत्रता से है। यह स्वतंत्रता ही समष्टि के साथ, अनेक व्यक्तियों के साथ सच्चे सहयोग को जन्म देती है।

कृष्णमूर्ति जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार विवेकानन्द जी के भी थे। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के बारे में बताया है कि शिक्षा समस्त शिक्षण तथा प्रशिक्षण का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य निर्माण होना चाहिए। शिक्षा का मतलब ऐसी जानकारियों को ढेर नहीं है, जिन्हें दिमाग में इस तरह ढूँस दिया गया हो कि वे जीवन भर अनपची रहकर गड़बड़ी पैदा करती रहें। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन—निर्माण कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम केवल पाँच ही विचारों को पचाकर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ कर लेने वाले व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक शिक्षित हो। कहा भी है —

‘यथा स्वरश्चभारवाही वेत्ता न तु चन्दस्य’

अर्थात् वह गधा, जिसके ऊपर चन्दन की लड़कियों का बोझ लाद दिया गया हो बात जान सकता है, चन्दन के महत्व को नहीं समझ सकता।

यदि तरह—तरह की सूचनाओं का संग्रह करना ही, शिक्षा कहलाता, तब तो पुस्कालय संसार में सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और विश्वकोष ही महान् षि बन जाते।

शिक्षा से विवेकानन्द का तात्पर्य आधुनिक प्रणाली की शिक्षा से नहीं वरन् ऐसी शिक्षा से है, जो सकारात्मक हो और जिससे स्वाभिमान तथा श्र(ा के भाव जागें। केवल किताबे पढ़ा देने से लाभ नहीं। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बु(ि विकसित हो और देश के युवक अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

स्वामी विवेकानन्द के इस मत से कृष्णमूर्ति जी भी सहमत थे और वे भी किताबी ज्ञान को ही सम्पूर्ण नहीं मानते थे। उनका भी विश्वास था कि व्यक्ति अर्थात् मानव को स्वतंत्र छोड़ दीजिए, सोचने और समझने के लिए, जिससे व्यक्ति के अन्दर सकारात्मक और श्र(ा के भाव जग सकें, जिससे चरित्र का निर्माण हो सके, बु(ि का विकास हो सके।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार उचित शिक्षा के महत्व को समझने के लिए हमें जीवन के अर्थ को उसकी समग्रता को समझना पड़ेगा और उसके लिए आवश्यक है कि हम सीधे और सच्चे तौर पर विचार कर सकें, न कि केवल सुसंगत तार्किक ढंग से। दृढ़ता और सुसंगत ढंग से सोचने वाला व्यक्ति विचारहीन होता है, क्योंकि वह किसी प्रारूप का अनुयायी होता है वह वाक्यों को दोहराता है तथा एक लीक पर ही सोचता है। अस्तित्व को निष्कर्षों या सि(ान्तों में नहीं समझा जा सकता। जीवन को समझने का अर्थ स्वयं अपने को समझना है और यही सही शिक्षा का आरम्भ और अंत भी है। जानकारी इकट्ठी करना तथा तथ्यों को बटोर कर, उन्हें आपस में मिलाना ही शिक्षा नहीं है, शिक्षा तो जीवन के अभिप्राय को उसकी समग्रता में देखना—समझना है परन्तु किसी समग्रता को उसके टुकड़ों के माध्यम से नहीं देखा जा सकता, जबकि सरकारें, संगठित धर्म एवं सत्तावादी दल, सभी यही करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

शिक्षा को गहरे जीवन—मूल्यों की खोज में हमारी सहायता करनी चाहिए, ताकि हम फार्मूलों से ही न चिपके रहें या नारों को ही न दोहराते रहें वह राष्ट्रीय और सामाजिक अवरोधों पर बल देने के बजाय उन्हें तोड़ने में उसे हमारी सहायता करनी चाहिए, क्योंकि वे मानव—मानव के बीच शत्रुता पैदा करते हैं। दुर्भाग्य से शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था हमें

गुलाम, यंत्रवत और घोर विचारहीन बना रही है। हालांकि बौद्धिक रूप से वह हमें जगाती है परन्तु आन्तरिक रूप से वह हमें अपूर्ण, कुंठित और यंत्रवत बना डालती है, जिसमें सृजनशीलता के लिए कोई स्थान नहीं रहता।

शिक्षा का लक्ष्य केवल विद्वानों, टेक्नीशियनों तथा नौकरी की तलाश में लगे लोगों को तैयार करना नहीं है, उसका लक्ष्य ऐसे पूर्ण स्त्री एवं पुरुष बनाना है, जो भय से मुक्त होकर क्योंकि केवल ऐसे ही व्यक्तियों के बीच में स्थायी शान्ति संभव है।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार सम्यक् शिक्षा वही है, जो विद्यार्थी की इस जीवन का सामना करने में मदद करे ताकि वह जीवन को समझ सके, उससे हार न मान ले, उसके बोझ से दब न जाएं, जैसे कि हममें से अधिकांश लोगों के साथ होता है। लोग, विचार, देश, जलवायु, भोजन, लोकमत, यही सभी कुछ लगातार आपको उस खास दिशा में ढकेल रहे हैं, जिसमें कि समाज आपको देखना चाहता है। आपकी शिक्षा ऐसी हो कि वह आपको इस दबाव को समझने के योग्य बनाए, इसे उचित ठहराने के बजाय आप इसे समझे और इससे बाहर निकले, जिससे कि एक व्यक्ति होने के नाते, एक मनुष्य होने के नाते, आप आगे बढ़कर कुछ नया करने में सक्षम हो सकें और केवल परम्परागत ढंग से ही विचार करते न रह जाएं। यही वास्तविक शिक्षा है।

शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में जे. कृष्ण मूर्ति के विचार

अनेक विचारकों तथा शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की अवधारणाओं की चर्चा की है। उनकी अवधारणाओं में देश-काल एवं परिस्थितियों के साथ-साथ सांस्कृतिक विषमताओं के कारण अनेक प्रकार की विविधताएँ पाई जाती हैं। कृष्ण मूर्ति जी का चिंतन देश-काल परिस्थिति एवं सांस्कृतिक विषमताओं की सीमा से परे जाकर शाश्वत जीवन को समझने में मानवता की सहायता करता है। यही कारण है कि उनकी शिक्षा एवं शिक्षा के उद्देश्यों में भी उसी शाश्वत की झलक मिलती है। शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को जे. कृष्णमूर्ति जी ने निम्न रूपों में व्यवस्थित किया है—

1. स्वयं को जानने के सम्बन्ध में—

हमारी समस्त शिक्षा बाह्य वस्तुओं के संबंध में ज्ञान—संकलन की पक्षधर है। हमने बहुत कम ऐसे क्षण निकाले हैं, जबकि हम स्वयं के बारे में जानने की जिज्ञासा रखते हों। कृष्णमूर्ति जी का मनाना है कि ऐसे लोग जो बाह्य वस्तुओं के बारे में तो अच्छी जानकारी रखते हैं, परन्तु स्वयं के बारे में पूर्णतः अज्ञानी हैं, उन्हें शिक्षित तो कहा ही नहीं जा सकता है। स्वयं के अस्तित्व का परिचय कराने वाली—शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है, क्योंकि स्वयं के ज्ञान में सब कुछ निहित है। आपके विचार से— 'अज्ञानी वह व्यक्ति नहीं है जो विद्वान नहीं, अज्ञानी वह व्यक्ति है जो स्वयं अपने को नहीं जानता और इस अवबोध के लिए जब विद्वान व्यक्ति मूढ़ है जो समझ और बोध के लिए किताबों पर जानकारीयों पर और प्रामाण्य पर निर्भर रहता है बोध केवल आत्मज्ञान से आता है और आत्मज्ञान आता है अपनी समस्त मानसिक प्रक्रिया के प्रति सजगता से। इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक अर्थ अपने को समझना है क्योंकि हममें से प्रत्येक में सम्पूर्ण अस्तित्व समाहित है। अतः अपने को जानना, पहचानना ही शिक्षा का सही अर्थ है।

2. बालकों की जिज्ञासा के सम्बन्ध में

बालकों में जानने की जिज्ञासा एवं सीखने की प्रवृत्ति सहज रूप में विद्यमान होती है। शिक्षा का मूल उद्देश्य होता है बालक की अन्तःनिहित प्रकृत प्रदत्त क्षमताओं का विकास करने में उनकी सहायता करे। शिक्षा का केन्द्र विद्यालय को माना जाता है जहाँ पर शिक्षार्थी अपनी जिज्ञासा को अध्यापक के समक्ष प्रस्तुत करता है। जहाँ पर अध्यापक एक माली के रूप विद्यार्थी की जिज्ञासा को अपने ज्ञान से सही मार्ग दर्शन दे कर सही दिशा प्रदान करता है। शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था है जो बालक में जिज्ञासा एवं सीखने की प्रवृत्ति के पुष्प को मुरझाने से बचाती है। कृष्णमूर्ति जी का कहना है— "सहज जिज्ञासा एवं सीखने की प्रवृत्ति बालक में बिल्कुल शुरू से रहती है। अवश्य ही समझदारी के साथ प्रोत्साहन देते रहना चाहिए ताकि वह सक्रिय बनी रहे, विकृत न हो।"

वास्तविकता यह है कि हम बालक की जिज्ञासा को या तो पनपने ही नहीं देते अथवा उसे विकृत कर देते हैं। यदि बालक की सीखने की इस उत्कण्ठा को हमेशा प्रोत्साहित किया जाता रहे तो वह सहज ही गणित विज्ञान या सामान्य ज्ञान के विषयों को बड़ी सहजता से सीखता चला जाएगा, फिर सीखना उसके लिए कोई समस्या नहीं रह जाएगी।

3. भय के अन्त के सम्बन्ध में

भय एक भयंकर मूलभूत मानवीय समस्या है। हमारी शिक्षा—व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि वह बालक को प्रारम्भ से ही किसी प्रकार के भय के प्रभाव से कार्य करने के लिए उसे बाध्य न करे। भय अत्यंत जटिल मनोभाव है, जिसे सुलझाये बिना हमारे शिक्षा का उद्देश्य पूरा न ही होता है। कृष्णमूर्ति जी के अनुसार— “भय ही है जो मन को पुष्पित होने से रोकता है, अच्छाई को पुष्पित होने से रोकता है। इसमें से अधिकांश भय के माध्यम से सीखते हैं। भय वस्तुतः आज्ञापालन तथा अधिकार का सारतत्व है माता—पिता और सरकारें आज्ञापालन चाहती हैं। जो शिक्षा भय का अन्त करने में हमारी सहायता नहीं करती वह शिक्षा अधूरी होती है, क्योंकि भय से जकड़ा हुआ मन द्वन्द एवं उलझन में जीता है और इसलिए वह हिंसक, विकृत एवं आक्रामक हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों के बीच स्थायी शांति संभव नहीं है। जो भय से मुक्त नहीं ऐसे व्यक्ति सदा अंधेरे में ही भटकते रहते हैं। कृष्णमूर्ति जी का कथन है— शिक्षा का लक्ष्य केवल विद्वानों, तकनीशियों तथा व्यवसाय की खोज करने में लोगो को ही उत्पन्न करना नहीं है, उनका लक्ष्य है ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना जो भय से मुक्त होकर स्वतंत्र चिंतन कर सके।

4. विवेक पूर्ण विद्रोह की क्षमता जागृत करने के सम्बन्ध

हमारे समाज में परम्पराएँ, कुरीतियाँ, रूढ़िया तथा अनेक प्रकार के भ्रामक जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जाता रहा है। जो व्यक्ति के मन को कुण्ठित और भयभीत की हुई है। शिक्षा का उद्देश्य यह है कि यह समाज में व्याप्त इन सामाजिक बुराई को दूर

करने में हमारी मदद करे तथा वास्तविक जीवन—मूल्यों को समझने का विवेक जागृत करे। भ्रामक जीवन मूल्यों के प्रति विवेकपूर्ण विद्रोह जो न तो हिंसात्मक हो न ही यह किसी प्रकार की प्रतिक्रिया हो। यह विद्रोह एक प्रकार के आदर्श को हटाकर दूसरे प्रकार की आदर्श को प्रतिष्ठित करने से भी सम्बन्धित नहीं है, अपितु यह एक ऐसा विद्रोह है जो अपने विचारों भावनाओं प्रतिक्रियाओं तथा परम्पराओं आदि के प्रति सदा सचेष्ट रहने से जागृत होता है। कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि विद्रोह दो प्रकार का होता है। एक तो हिंसात्मक विद्रोह जो स्थापित व्यवस्था के विरोध में बिना समझे—बूझे की गई प्रतिक्रिया मात्र हैं दूसरा विवेकजन्य गहरा, मनो—वैज्ञानिक विद्रोह। ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं जो स्थापित रूढ़िवादी व्यवस्थाओं, नई भ्रान्तियों एवं प्रच्छन्न आत्म—तृष्टिकरण में ही फंस जाते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि हम एक वर्ग के या स्थिर आदर्शों को स्वीकार लेते हैं और इस प्रकार विचारों की एक नवीन व्यवस्था प्रणाली का सर्जन करते हैं, जिसके विरोध में पुनः सुधारने की आवश्यकता पड़ती है

परन्तु एक ऐसी भी विवेकपूर्ण विद्रोह होता है जो प्रतिक्रिया मात्र नहीं होता और जो अपने विचारों और भावनाओं के प्रति चेतना द्वारा आत्म—बोध के साथ आता है।

5. अनुशासन की समझ उत्पन्न करने के संबंध में

कृष्णमूर्ति जी के अनुशासन—शिष्यत्व से जुड़ा है क्योंकि अनुशासन का सम्बन्ध सीखने से है, अनुशासन का अर्थ किसी चीज का अनुकरण करना नहीं है, या विद्रोह करना नहीं, बल्कि अनुशासन का अर्थ अपनी प्रतिक्रियाओं, अपनी पृष्ठभूमि और इनकी सीमाओं के बारे में सीखना और इसके पार चले जाना।

लेकिन सामान्य अर्थ होता है बड़ों के अनुसार स्वयं को बनाना। माता—पिता, शिक्षक जो कुछ कहते हैं, उसके अनुरूप चलना, किसी एक इच्छा का प्रतिरोध करना तथा दूसरे को महत्व देना, किसी कार्य को किसी विशेष तरीके से पूरा करना ही अनुशासन समझा

जाता है। अनुशासन का यह भी अर्थ होता है कि बिना सोचे समझे किसी वस्तु को स्वीकार करना या किसी का त्याग कर देना। कृष्णमूर्ति जी के अनुसार बल पूर्वक थोपे गये अनुशासन को महत्वहीन तथा भयानक बताते हैं। उनका कहना है कि वास्तविक अनुशासन का निवास तो मन की अखण्ड सत्ता में निहित होता है। मन की समस्त विसंगतियों को समझने के उपरान्त ही वास्तविक अनुशासन का अस्तित्व प्रकट होता है। वास्तव में जब हमारा प्रत्येक क्रिया-कलाप समग्र होता है तो वहाँ अनुशासन नाम की कोई चीज नहीं होती, अनुशासन की अवस्था ही वास्तविक अनुशासन है, जहाँ किसी प्रकार का द्वैत नहीं होता। कृष्णमूर्ति जी कहना है- यदि प्रेम करते हैं तो अनुशासन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती प्रेम स्वयं सृजनात्मक बोध क्षमता लाता है, इसलिए वहाँ न प्रतिरोध होता है और न संघर्ष। लेकिन यदि हम केवल

6. स्वतन्त्रता प्रेम एवं अच्छाई प्रस्फुटन करने के संबंध में

स्वतंत्रता, आजादी-व्यक्ति जो सोचता है उसको अभिव्यक्त करने की जो वह करना चाहता है, उसे करने की जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं में से एक है। स्वतंत्रता में ही प्रेम और अच्छाई प्रस्फुटित हो सकते हैं और यह स्वतंत्रता केवल उचित प्रकार की शिक्षा ही दे सकती है। स्वतंत्र होने के लिए हमें यह अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि हम पराधीन या परतंत्र क्यों हैं। जब तक पराधीनता के संपूर्ण कारणों को उसकी गहराई से ठीक-ठीक नहीं समझ लिया जाता, तब तक हमारी स्वतंत्रता आकाश कुसुम ही बनकर रह जाती है। एक स्वतंत्र व्यक्ति के हृदय में ही प्रेम एवं अच्छाई का जन्म होता है। “कृष्णमूर्ति जी कहते हैं स्वतंत्र होने के लिए हमें अपनी इस संपूर्ण आन्तरिक पराधीनता के खिलाफ विद्रोह करना होगा और हम यह तब तक नहीं कर सकते जब तक कि हम यह नहीं समझ लेते कि हम पराधीन क्यों हैं? जब तक हम सचमुच इस आन्तरिक पराधीनता का नहीं समझ लेते और इसका अंत नहीं कर देते तब तक स्वतंत्र होना असंभव है।”

7. स्वज्ञान के सम्बन्ध में

कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि हमारी सम्पूर्ण शिक्षा सूचनाओं एवं बाह्य वस्तुओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने को ही प्रेरित करती है, परन्तु यह वास्तविक शिक्षा नहीं है। हम चाहे बाह्य वस्तुओं के बारे में कितना भी जान लें, जब तक स्वयं बारे में नहीं जानते तब तक हम अज्ञानी एवं महामूढ़ ही बने रह जाते हैं। यदि हम 'स्व' अर्थात् 'आत्मा' ज्ञानी है तो इसमें हमारी सारी समस्याओं का नदान हो जाता है। क्योंकि आत्मज्ञान में अखिल विश्व समाया हुआ है, और इसी आत्मज्ञान में मानवता के समस्त संघर्षों को आत्मसात करने की क्षमता भी निहित है। आत्मज्ञान के माध्यम से ही हम यह जानना प्रारम्भ करते हैं कि ईश्वर क्या है सत्य क्या? और समयातीत अवस्था क्या है। अतः वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह हमें अपने आप को जानने में हमारी सहायता करें।

8. अहंकार से मुक्ति प्रदान करने के सम्बन्ध में

अहंकार व्यक्ति को सीमित, भ्रष्ट, हिंसक एवं मूढ़ अज्ञान बना देता है। अहंकारी न्याय-अन्याय या बोध खो देता है। वह समाज में बनी व्यवस्था से अपने को ऊपर समझने लगता है। अतः शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि वह व्यक्ति को अपने अनुभव कराने में उसकी सहायता करे। अहंकारी व्यक्ति की ऊर्जा सीमित होती है। वह छोटे से घर में बंधा रहता है। अतः जो असीम और अपरिमेय है। उसे कभी भी सीमित नहीं किया जा सकता है, और यही उसके दुःख का मूल कारण भी है। अहंकार मानव मन द्वारा अपने संबंध में बनाई गई एक ऐसी प्रतिमा है। जिसमें उसके विचार, ज्ञान द्वन्दों एवं कष्टों का सुखद अनुभव, धारणाएँ, स्मृतियाँ नाम इत्यादि सभी कुछ सम्मिलित है। यही अहंकार हमारे 'मैं' का बोध कराता है। यही हमारा 'स्व' है। कृष्णमूर्ति जी कहते हैं शिक्षा से हमारा सरोकार जिस बात से है वह मन को 'मैं' से मुक्त करना। हमारा कार्य एक ऐसी नयी पीढ़ी को जन्म देना है, जो उस सीमित ऊर्जा से मुक्त हो किये 'मैं' कहा जाता है।

9. जीवन जीने की कला सिखाने के सम्बन्ध में

साधारणतया जीवन के किसी विशेष क्षेत्र में निपुणता प्राप्त करने की कला समझा जाता है, जैसे संगीत – कला, मूर्ति-कला, शिल्पकला अभिनय की कला शिक्षण की कला इत्यादि। परन्तु जीवन जीने की कला इन सभी कलाओं में श्रेष्ठ एवं महान है। जिसने जीवन जीने की कला ठीक से जान ली उससे बड़ा कोई कलाकार नहीं है। वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह अन्य कलाओं के साथ-साथ जीवन जीने की उस महानतम कला को भी सिखायें, जिसके अभाव में मनुष्य, मनुष्य रह ही नहीं जाता।

10. जीवन में ही मृत्यु का बोध कराने के सम्बन्ध में

मृत्यु हम सभी के लिए एक भयानक अन्त है। मृत्यु का अर्थ होता है अस्तित्व का मिट जाना। समाप्त हो जाना। हर मनुष्य के जीवन का अंत अवश्य भावी है, इसे हम प्रतिदिन अपने चारों ओर देखा भी करते हैं। पर मैं मरना नहीं चाहता। यह 'मैं' एक प्रक्रिया है—मैं सोच रहा हूँ, मैं अनुभव कर रहा हूँ मेरा ज्ञान, वे सारी चीजें जिन्हें मैंने बनाया—बढ़ाया है, वे सारी चीजें जिनका मैंने प्रतिरोध किया है, मेरा चरित्र मेरा सामर्थ्य मैं नहीं चाहता कि इस सबका अंत हो, लेकिन सीधी- सी बात यह है कि हर स्पंदनशील जैव प्रणाली का कभी न कभी अंत होना ही है। परन्तु हम लोगों का मन इसे स्वीकार नहीं करता। हमारा मन सदैव मृत्यु के सम्बन्ध में नाना प्रकार की परिकल्पनाएँ किया करते हैं और यह नहीं चाहता कि हम मरें। यही कारण है कि मृत्यु के उपरान्त हम स्वर्ग जाने की परिकल्पना करते हैं। हमारा सभी का अनुभव है कि इस जीवन में तो कोई सुख शांति नहीं मिली, परन्तु स्वर्ग में सुख अवश्य मिलेगा। स्वर्ग एवं नर्क की परिकल्पना हमारे मृत्यु का परिणाम है। कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि शिक्षित होने का यह अर्थ है कि हम जीते जी मृत्यु का अनुभव कर सकें।

11. वास्तविक चरित्र का निर्माण के सम्बन्ध में

चरित्र का निर्माण शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य है। सभी शिक्षा शास्त्री यह मानते हैं शिक्षा का कार्य बालक के चरित्र का निर्माण करना है। परन्तु चरित्र का निर्माण कैसे हो?

इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए कृष्णमूर्ति जी कहना है चरित्रवान बनने का निश्चित अर्थ है असत्य को त्यागने और सत्य को अपनाने की सामर्थ्य रखना। अपने लिए स्वयं सोचना और सत्य की खोज करना, और उस सत्य पर दृढ़ रहना, इसी का अर्थ है चरित्र—निर्माण।

धर्मग्रन्थों, महात्माओं, राजनेताओं, माता—पिता, गुरु या तत्कालीन सरकारें क्या करती हैं? इस पर बिना सोचे समझे उनका अनुसरण करने से चरित्र का निर्माण नहीं होता। चरित्र निर्माण के लिए मेधा, धैर्य एवं ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सत्य का अनुसरण करे, सत्य को ही अपनाये और असत्य का सदा त्याग करता जाये, चाहे इस कार्य के लिए अपने प्राणों की भी आहूति क्यों न देनी पड़े। भय या पुरस्कार के बल पर आधारित चरित्र अस्थायी एवं मूल्यहीन होता है। सत्य की खोज करने एवं उस पर आडिग बने रहने से जो चरित्र निर्मित होता है, वह स्थायी और मूल्यवान होता है। ऐसे चरित्रवान व्यक्ति का जीवन अपने आप में एक आनन्द होता है।

12. शरीर, मन एवं हृदय के बीच सामंजस्य स्थापित करने के सम्बन्ध में

वर्तमान शिक्षा समाज के लिए जीविकोपार्जन का साधन बनती जा रही है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति येन केन प्रकारेण धन—संग्रह करने में लगा हुआ है। इस प्रकार से धनोपार्जन करने वाले व्यक्तियों के शरीर एवं मन हृदय कठोर हो जाते हैं और उनकी संवेदनशीलता मर जाती है। वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बालक को धन की महत्ता एवं उसकी सीमाओं का प्रारंभ से ही बोध कराने का प्रयास करें। जिससे वह अपने शरीर मन एवं हृदय को जटिल, कठोर एवं खण्डित न होने दे, अपितु उनके बीच एक समरस एवं संगीतिक सामंजस्य बना रहें। मनुष्य का प्रस्फुटिल होना क्या है? यह प्रस्फुटन हमारे मन, हमारे हृदय हमारे शारीरिक कल्याण का समग्र उद्घाटन और विकास है। इनका अर्थ उनके बीच बिना किसी विरोध या विसंगति के पूर्ण संगति और सामंजस्य में जीना।

13. स्वयं को आलोकित करने में सहायता करने के सम्बन्ध में

शिक्षा का प्रारम्भ गुरु, शिक्षक या मार्गदर्शक से ही होता है, अतः शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका के कारण ही संतो, महात्माओं और पथ-प्रदर्शकों ने गुरु की बड़ी महिमा गायी है। परन्तु कृष्णमूर्ति जी ने एक सीमा तक ही गुरु की भूमिका मानते हैं। यदि गुरु उस सीमा से आगे बढ़ जाता है, तो वही गुरु शिष्य के लिए बंधन निर्मित कर देता है। सम्पूर्ण मुक्ति के लिए गुरु का बंधन एक प्रकार का परतन्त्रता है, क्योंकि गुरुओं के बिना हम अपने को दिशाहीन पाते हैं और ऐसा मानते हैं कि गुरु ही हमारे पथ को आलोकित करता है। वास्तविक गुरु वह होता है जो अपने को भी शिष्य से दूर कर लेता और बु(की भांति यही महता है कि 'अव्य दीपों भव' अर्थात् अपने दीये स्वयं बनों, अपना आलोक स्वयं बनों कब तक कोई गुरु तुम्हारे पथ को आलोकित करता रहेगा। यही कारण है कि कृष्णमूर्ति जी सदा गुरुओं का विरोध किया करते हैं। वे गुरु को कोई महत्व ही नहीं देते हैं। उनका कहना है कि सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि आप अपने लिए स्वयं अपना प्रकाश बनें। स्वयं अपने गुरु और स्वयं अपने शिष्य बनें। स्पष्ट है कि वास्तविक शिक्षा वह है जो व्यक्ति को स्वयं अपना आलोक बनने में उसकी सहायता करती है।

14. जीवन के रहस्यों के सम्बन्ध में

मानव मन विसंगतियों का एक समुच्चय है। ऐसी स्थिति में समाज के प्रत्येक वर्ग को विशेष रूप में माता-पिता तथा शिक्षक को इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए कि शिक्षा क्या है? कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि मात्र साक्षर हो जाना कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेना, कुछ तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर लेना या कुछ छोटे-मोटे कार्यों द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त करने में कुशलता प्राप्त कर लेना ही शिक्षा नहीं है अपितु शिक्षा

का कार्य है कि बालक को बचपन से ही जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया को जीवन बड़ा अद्भूत है, यह असीम और अगाध है, यह अनन्त रहस्यों के लिए हुए है, यह एक विशाल साम्राज्य है जहाँ मानव कर्म करते हैं। यदि हम अपने आपको केवल आजीविका के लिए तैयार करते हैं तो हम जीवन का पूरा लक्ष्य ही खो देते हैं।

जीवन हमारे तुम्हारे के रूप में खण्डों में नहीं बंटा है जीवन अपने आप में एक अखण्ड सत्ता है। ये फूल रंग बिरंगे पक्षी में वैभवशाली, वृक्ष यह आकाश जिसमें अनन्त तारें हैं, जीवन दायिनी सरिताएँ, विशाल पर्वत, मालाएँ यह सब कुछ हमारा जीवन ही तो है। कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि ऐसा लगता है कि जीवन समृद्धि भी है तो जीवन दान भी है और धर्म भी जीवन बड़ा गुढ़ है। जीवन मन की प्रच्छन्न वस्तुओं जैसे ईर्ष्या, महत्वकाक्षाएँ, वासनाएँ एवं सफलताएँ, नाना प्रकार की चिन्ताएँ और टूटना ही नहीं, जीवन कहीं इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है लेकिन वास्तविकता यह है कि हम जीवन के कुछ अंशों में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं। अतएव शिक्षा का कार्य है कि वह जीवन की प्रक्रिया को समझने हमारी सहायता करे न कि हमें केवल कुछ व्यवसाय या ऊँची नौकरियों के योग्य बनाये।

शिक्षा के कार्य के सम्बन्ध में जे. कृष्णमूर्ति जी के विचार

शिक्षा का कार्य ऐसे मनुष्य तैयार करना है जो पूर्ण, समुचित हों अर्थात् प्रज्ञाशील हों। हम बिना प्रज्ञाशील हुए भी डिग्री प्राप्त कर सकते हैं तथा यांत्रिक रूप से सक्षम हो सकते हैं।

शिक्षा का कार्य व्यक्ति को न तो समाज के अनुरूप बनने के लिए प्रोत्साहित करना है, और न ही समाज के साथ नकारात्मक सामंजस्य लाने के लिए वास्तविक जीवन मूल्यों की खोज में व्यक्ति की सहायता करना ही शिक्षा का कार्य है और ये मूल्य निष्पक्ष अन्वेषण तथा आत्म सजगता से ही आते हैं। आत्मबोध के अभाव में आत्म-अभिव्यक्ति अहंकार बन जाती है और उसके साथ तमाम आक्रामक एवं महत्वाकांक्षी द्वन्द्व पैदा हो जाते हैं। शिक्षा

का कार्य आत्म सजगता की क्षमता को जागृत करना है, न कि तुष्टीकरण वाली अभिव्यक्ति में लिप्त करना।

शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य ऐसे समन्वित व्यक्तियों को पैदा करना है, जो जीवन का उसकी समग्रता में सामना करें। एक विशेषज्ञ की तरह ही आदर्शवादी व्यक्ति को भी समग्रता से कोई मतलब नहीं होता, उसका सरोकार केवल अंश से ही होता है। जब तक व्यक्ति कर्म के किसी आदर्श प्रारूप के पीछे चल रहा है तब तक उसके लिए समन्वित होना संभव नहीं होता, और अधिकांश आदर्शवादी अध्यापक प्रेम को उठाकर एक ओर रख देते हैं, उनका मन नीरस तथा हृदय कठोर होता है। यदि हमें किसी बच्चे का अध्ययन करना हो तो यह आवश्यक है कि हम सजग, सावधान और आत्म-सचेत हो और इसके लिए अपार प्रज्ञा और प्रेम की आवश्यकता है, न कि उसे किसी आदर्श का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित करने की।

शिक्षा का कार्य है, नवीन मूल्यों को सृजन करना। बच्चे के मन में केवल प्रचलित मूल्यों का रोपण करना एवं आदर्शों के अनुकूल बनाना उसे संस्कारब(करना है और इससे उसकी सम्यक बु(ि जागृत नहीं होगी।

सम्यक शिक्षा का कार्य है स्वतंत्रता और प्रज्ञा का संवर्धन और यह किसी प्रकार की जबरदस्ती में, उसमें निहित भय की माहौल में संभव नहीं है आखिर अपने व्यक्तित्व की तमाम जटिलताओं को समझने में छात्र की सहायता करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।

शिक्षा का कार्य केवल व्यक्तियों के बीच ही नहीं बल्कि व्यक्ति और समाज के बीच की उचित सम्बन्ध का संवर्(न करना है, और इसीलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा सबसे पहले व्यक्ति की स्वयं अपनी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझने में सहायता करे। स्वयं अपने में तथा अपने से ऊपर से प्रज्ञा उजागर होती है ऋ परन्तु जब वह व्यय सम्यक बु(ि को भष्ट्र करता है और इस प्रकार से स्व कर्म का जन्मदाता है।

जब हम छोटे होते हैं, तभी से घर में तथा स्कूल में हममें भय बैठा दिया जाता है, न तो अभिभावकों को और न अध्यापकों को ही इतना धैर्य, समय अथवा विवेक होता है कि बचपन के जन्मजात भयों को समाप्त करें और ये भय जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं, हमारी अभिवृत्तियाँ तथा निर्णयों पर अपना प्रभुत्व जमाने लगते हैं तथा अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा करते हैं। उचित शिक्षा का कार्य है कि इस भय के प्रश्न पर अवश्य विचार करना चाहिए क्योंकि जीवन के हमारे समस्त दृष्टिकोणों को विकृत कर देता है। निर्भयता ही प्रज्ञा का प्रारम्भ है और केवल उचित शिक्षा ही भय से मुक्ति दिला सकती है और तभी गहन एवं सृजनशील प्रज्ञा संभव है।

सच्ची धार्मिक शिक्षा का कार्य प्रज्ञापूर्वक जागरूक रहने में, वास्तविक और क्षणिक के बीच विवेक करने में तथा जीवन के प्रति तटस्थ दृष्टि अपनाने में बालक की सहायता करना है। किन्ही शब्दों या सूत्रों के बारंबार बुदबुदाने या दोहराए जाने की अपेक्षा घर या स्कूल में प्रत्येक दिन का शुभारंभ गहन चिंतन तथा महत्वपूर्ण पाठन से हो।

वर्तमान में शिक्षा का सम्बन्ध बाहरी कार्यकुशलता से हो गया है, मनुष्य की आंतरिक प्रकृति की या तो शिक्षा पूर्णतया उपेक्षा कर देती है या उसे जान-बूझकर विकृत कर देती है, वह उसके केवल एक अंश का ही विकास करती है तथा शेष को बोझ के रूप में ढोने के लिए छोड़ देती है। जब सही शिक्षा नहीं होती तब हम एक-दूसरे को नष्ट करते हैं हर व्यक्ति को जो भौतिक सुरक्षा मिलनी चाहिए, उससे वंचित करते हैं। छात्र का सही शिक्षा देने का कार्य है अपनी समग्र प्रक्रिया को स्वयं समझ सकने के योग्य बनाने में, उसकी सहायता करना क्योंकि प्रज्ञा तथा आंतरिक परिवर्तन की संभावना तभी होती है, जब दिन-प्रतिदिन के कार्यों में मन और हृदय का समन्वय हो जाता है।

शिक्षा का कार्य है बच्चों को समझना, उनके खेल विधि का अवलोकन करना। बच्चे को यदि समझना है तो हमें खेलते समय उसका सतर्क अवलोकन करना होगा, उनका

अध्ययन करना होगा— विविध मनोदशाओं में। हम और न आप अपने चाहे हुए किसी प्रारूप में ही उसे ढाल सकते हैं।

शिक्षा का कार्य है जानकारी इकट्ठा करना एवं तथ्यों को बटोर कर, उन्हें आपस में मिलाना। सही शिक्षा का कार्य है कि वह किसी तकनीक प्रशिक्षण के ज्ञान को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ कुछ ऐसा काम करे, जो कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यानी वह जीवन की अखंड प्रक्रिया का अनुभव करने में भी मनुष्य की सहायता करना।

शिक्षा का कार्य है— अपने आप में बदलाव लाना। हमें अपने को पुनः शिक्षित करना है कि हम किसी भी कारण से एक-दूसरे की हत्या न करें, वह चाहे कितना भी उचित क्यों न लगता हो, किसी भी विचारधारा के लिए ऐसा न करें, चाहे विश्व के भविष्य के सुख के लिए वह कितना भी आशाप्रद क्यों न प्रतीत होता हो, हमें करुणामय होना सीखना होगा, थोड़े में संतुष्ट रहना तथा सर्वोच्च या 'परम' की खोज करना सीखना होगा।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जे० कृष्णमूर्ति के विचारों की वर्तमान समय में उपादेयता

जे० कृष्णमूर्ति जी के अनुसार — औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के प्रथम स्तर को प्राथमिक शिक्षा स्तर कहा जाता है। बालक की आयु 6 वर्ष होने पर प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ होती है। तथा साधारणतः 14 वर्ष की आयु होने तक चलती है। इस स्तर पर बालक किसी शिक्षा संस्थान में नियमित ढंग से विद्याध्ययन प्रारम्भ कर देता है। अतः कक्षा 1 लेकर 8 तक शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा कहा जा सकता है। जे० कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि प्रजातंत्र को सफलतापूर्वक व प्रभावशाली ढंग से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी नागरिक कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य प्राप्त करें, जिससे वे देश की समस्याओं पर विचार कर सकें। वैसे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की सर्वप्रथम व्यवस्था सन् 1842 में स्वीडन ने किया तथा 1870 में इंग्लैण्ड एवं 1905 में हंगरी, पुर्तगाल, स्वीट्जरलैण्ड आदि ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किया। भारत में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की दिशा में सर

इब्राहिम रहीम तुल्ला व सर चिमन लाल सीतलबाड़ का प्रयास सफल रहा। बड़ौदा के महाराज सियाजी राव गायकवाड़ ने 1893 में प्रयोगात्मक रूप में अमरेली ताल्लुके में तथा बाद में 1906 में अपनी सम्पूर्ण रियासत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था। इस प्रकार के प्रयास अन्य राज्यों के द्वारा किये गये लेकिन द्वितीय विश्व यु(के कारण प्राथमिक शिक्षा के अनिवार्यता की दिशा में कोई विशेष प्रगति सम्भव नहीं हो सकी।

जे० कृष्णमूर्ति जी ने प्राथमिक शिक्षा को जीवन के कोमल पक्ष के रूप में मानते हैं उनका कहना है यही वह समय है बालक में संस्कार निर्माण करने की। अतः इस स्तर पर शिक्षक/गुरु का कार्य अति संवेदित हो जाती है क्योंकि इस बालक का मस्तिष्क एक स्वच्छ स्लेट की भांति होता है। उस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। ऐसे समय में माता-पिता एवं शिक्षक का दायित्व गुरुत्तर हो जाता है। हमें सदैव सावधान रहकर बालक में संस्कार एवं ज्ञान को प्रकाशित कराना है। इस स्तर पर बालक के विकास के लिए स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए –

- 1 बच्चों को स्वास्थ्य संबंधी नियमों का ज्ञान कराना और स्वास्थ्य बर्क क्रियाओं में प्रशिक्षित करनी।
- 1 बालकों को उनकी मातृभाषा ;क्षेत्रीय भाषाद्ध और उनके प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान कराना।
- 1 बच्चों में सामूहिकता की भावना का विकसित करना, उन्हें वर्गभेद से ऊपर उठाना और जीवन कला में प्रशिक्षित करना।
- 1 बच्चों को सांस्कृतिक क्रियाओं – उत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य की ओर भाग लेने की ओर अग्रसर करना और उनमें सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना।

- 1 बच्चों को शरीर श्रम के अवसर देना उसमें, शारीरिक श्रम के प्रति आदर भाव पैदा करना और उनकी सृजनात्मक शक्ति को सचेष्ट करना।
- 1 बच्चों को एक दूसरे का सम्मान करने की ओर प्रवृत्ति करना और उन्हें सहानुभूति और सहयोग से कार्य करने की ओर उन्मुख करना।
- 1 बच्चों को विभिन्न धर्मों के अग्रतों और उनकी शिक्षाओं से परिचित कराना उनमें सवधर्म समभाव का विकस करना।
- 1 बच्चों को सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का विकास करना तथा उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर जे० कृष्णमूर्ति जी ने कहा है कि इनकी पाठ्यचर्या में पहली एवं दूसरी कक्षा में एक भाषा—मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, गणित, स्वास्थ्य और उत्पादक जीवन की कला को रखना चाहिए। तीसरी से पांचवी कक्षा में एक भाषा—मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, गणित, स्वास्थ्य और उत्पादक जीवन की कला। उच्च प्राथमिक स्तर पर तीन भाषाएं—;भाषा—मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा, आधुनिक भारतीय भाषा और अंग्रेजीद्ध गणित, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, सामाजिक विज्ञान, कार्य शिक्षा, कला शिक्षा ;ललित/दृश्य और प्रदर्शन कलाद्ध स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा तथा धार्मिक शिक्षा जिसमें सूर्य नमस्कार, आसन, ध्यान आदि का व्यावहारिक रूप में शिक्षा दी जाय जे० कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि ईश्वर से आध्यात्मिक संबंध स्थापित करने के लिए हम अपने घरों तथा विद्यालयों में प्रचुर साधन जुटाएँ। अनन्त की गंभीर चेतावनी से रहित जीवन जिस स्वतंत्रता का सृजन करता है वह दिखावटी ही होती है साथ ही दासता के नए तथा विविध रूपों को भी जन्म देती है। इस प्रकार के धार्मिक आदर्श तक हम तभी पहुँच सकते हैं जब विद्यालयों को प्रकृति के सान्निध्य में रहने का साधन उपलब्ध होंगे। उनका दैनिक विकास जीव मात्र

की सेवा के ऐसे वातावरण में होना चाहिए जिसमें वे वृक्ष आदि लगा और बढ़ा सके, पशुपक्षियों को दाना-चारा देते रहें और भूमि, जल तथा वायु के अनन्त रहस्यों की अनुभूति करना सीखें। उनका विश्वास था कि विद्यालय में भौतिक तथा सामाजिक दोनों दृष्टियों से सन्तुलित और उद्दीयक पर्यावरण बना लेने से चरित्र तथा व्यक्तित्व को प्रशिक्षित करने का आधा काम पूरा हो जाता है। जे० कृष्णमूर्ति द्वारा स्थापित विद्यालयों तथा उनके अनुभव ने अपने ढंग से अनेकों सत्यों की पुष्टि की जिनका पता ज्ञानशील शिक्षकों ने व्यावहारिक क्रिया क्षेत्र में लगाया था। देवी ने अपने शिकागों स्थित प्रयोगिक विद्यालय में, होमर लेन ने अपने 'लिटिल कामन वेल्थ' में मैकरें को ने अपने सुकुमार बच्चों के विद्यालय में तथा वासकैन्सिलास ने अपने न्यू स्कूल इन बेल्जियम में ऐसे ही सत्यों का पता लगाया था।

जे० कृष्णमूर्ति जी यह चाहते थे कि बालक तथा बालिकाएँ निर्भय बनें, उनका मतिष्क खुला तथा उन्मुक्त रहे, वे आत्म निर्भर हो, उनमें अनुसंधान एवं स्व० आलोचन के प्रेरक ऐसे मनोभाव हो नकी जड़े भारत भूमि में तो गहरी हो, परन्तु सारे विश्व में फैली हो तथा मेल, भाई चारा और सहयोग बढ़ाने वाली हो एवं भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायक हो।

जे० कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि वर्तमान समय विकास एवं विकास का समय है ऐसे में शिक्षकों को नवीन व्यावहारिक ज्ञान से परिपूर्ण होना चाहिए इसके लिए पुनवोधात्मक एवं अभिनवीकरण के पाठ्यक्रम संचालित कर समय-समय पर उन्हें समाज के अनुरूप रखने की आवश्यकता है इसके साथ ही साथ वे संवेदनशीलता, आध्यात्मिकता, नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों से ओत प्रोत भी हो।

जे० कृष्णमूर्ति जी विद्यालय के लिए उपयुक्त स्थान के चयन को अत्यधिक महत्व देते थे। शैशव एवं यौवन काल के अनुभवों ने उन्हें यह प्रेरणा दी थी कि स्वतंत्र, उन्मुक्त और अवसित प्रकृति के साथ नवमस्तिष्कों का महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित

किया जाय। प्रकृति ने उनके कलात्मक मस्तिष्क का असीम आनन्द और विस्मय से भर दिया था। उनकी धारणा थी कि पृथ्वी और आकाश, सूर्य एवं तारों वृक्षों एवं फूलों, नदियों तथा पहाड़ियों तथा प्रकृति के हर प्रदेश में होने वाली शांति और उठने वाले तूफानों से सम्पूक्त होने पर बालक खुल पड़ता है और उसे शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य भी प्राप्त होता है इसी भावना से ओत प्रोत एवं भारतीय आश्रमों के आदर्श से प्रेरित होकर प्रकृति की सुरम्य वातावरण में विद्यालयों को स्थापित किए। अतः वर्तमान समय में यदि विद्यालयों की स्थापना की जाय तो इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि विद्यालय भीड़भड़ वाले नगर के बाहर स्थापित किए जाएं जहाँ शांत एवं शीतल वातावरण में अध्ययन एवं अध्यापन किया जाय। वर्तमान समय में बालक के स्वास्थ्य से संबंधित क्रियाओं को उतना महत्व नहीं दिया जा रहा है। जितना महत्व मानसिक विकास को। जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे बालक प्रकृति के संसर्ग और फलतः उसके जीवन दायी प्रभाव से वंचित होने जा रहे हैं। लिहाजा कम उम्र में ही बालक अनके रोगों के शिकार होते जा रहे हैं। उन्होंने एक उ(रण में बताया कि इस शताब्दी के पाँचवे दशक के आरम्भिक वर्षों के भारी उपद्रव के दिनों में जब लन्दन के बच्चों को देहातों में शरण लेनी पड़ी थी तो यह ज्ञात हुआ था कि बहुत से बालकों ने न तो पहले कभी खेत देखे थे, न फसले ही और न चौपाये ही। कुछ बच्चों की यही धारणा थी कि भेड़ तथा बकरियाँ पशुमात्र हैं। जिनके चित्र वे अपनी पुस्तकों में देखा करते थे।

जे० कृष्णमूर्ति के विचारों के आधार पर वह कहा जा सकता है कि वर्तमान शिक्षा—विशारदों एवं शिक्षा प्रमुखों को अपने देश की वर्तमान परिस्थितियों पर ध्यान देना चाहिए और शासन पर जोर डालना चाहिए कि वह स्वस्थ उन्मुक्त और स्वतंत्र वातावरण में विद्यालय स्थापित करें जिससे बालकों का विकास सामान्य परिस्थितियों में हो सके।

जे० कृष्णमूर्ति जी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि शिक्षकों का बच्चों के साथ असंगत और अमनौ वैज्ञानिक व्यवहार उनके हृदय को व्यथित कर देता है तथा इससे चिंतित एवं दुखी होकर कहते थे कि शिक्षक कभी यह सोचने का प्रयत्न करते हैं कि बालकों की स्वाभाविक सवृत्ति क्या है? उनका मानस किस प्रकार कार्य करता है। उन्हें इस बात की लेशमात्र चिन्ता नहीं रहती है कि हम बालकों को ऐसी बातें सिखा पढ़ा रहे हैं जिनमें उनका कुछ भी मन नहीं लगता और न जिनके प्रति बच्चों के मन में कोई अनुराग या जिज्ञासा ही है। “हम बच्चों को भूगोल सिखाने के फेर में पढ़कर उनकी पृथ्वी छीन लेते हैं और व्याकरण पढ़ाने के फेर में उनकी भाषा दीन लेते हैं। बच्चें तो चाहते हैं महाकाव्यों की कथाएं सुनना और हम उन्हें इतिहास की घटनाएँ और तिथियाँ बताते हैं। बच्चे जन्म तो लेते हैं मानव जगत में पर हम उन्हें जानदार ग्रामाफोन के जगत में धकेल देते हैं। इस संबंध में जे० कृष्णमूर्ति जी का विचार था कि बच्चों की शिक्षा का श्री गणेश स्पंदन शील भूमि, जीती जागती भाषा तथा स्फूर्ति दायक कथाओं से होना चाहिए तथा शिक्षक का कर्त्तव्य यह होना चाहिए वह उनमें तथा भाषा एवं भूगोल आदि अकादमिक विधाओं तथा शिक्षण में प्रत्ययकारी संबंध स्थापित करें इस प्रकार के संबंध स्थापना की विफलता वस्तुतः शिक्षक की विफलता है जिसके लिए बच्चों को दाण्डत नहीं किया जाना चाहिए।

आज जे० कृष्णमूर्ति जी जे विचारों की प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में विशेष प्रासंगिक है क्योंकि भारतीय शिक्षा व्यवस्था जो कोरे यथार्थवादी सि(न्त पर टिकी है जिसमें शिक्षा बाजार एवं उपयोगी तक ही सीमित हो गयी है इससे न तो बच्चे के प्रकृति के साथ कोई तालमेल है न समाज की विविध आवश्यकताओं एवं मूल्यों के साथ ही न्याय जैसे जकड़ी का व्यापारी यह सोच सकता है कि पेड़ के फूल एवं पत्तियों केवल सजावट हैं परन्तु उसे यह भी जानना होगा कि यदि फूल पत्तियाँ विलुप्त कर दी जाए तो पड़ेगी विलुप्त हो जायेगा। आज भारतीय शिक्षा व्यवसायियों का दृष्टिकोण बहुत कुछ लकड़ी के व्यापारियों

के सदृश्य हो गया है। अतः वर्तमान समय में इस बात की प्रासंगिकता है। कि० जे० कृष्णमूर्ति जी के विचारों के अनुरूप बालक की कल्पना शक्ति, सृजनशीलता, भ्रमणकारी दृष्टि को बढ़वा देकर बालक को समग्र व्यक्तित्व वाला बनाया जाय। जे० कृष्णमूर्ति जी की शिक्षा व्यवस्था जो विभिन्न स्कूलों में प्रदर्शित है उसको पूरे भारत में प्रचारित एवं प्रसारित की राष्ट्र एवं समाज तथा व्यक्ति का अद्भुत विकास किया जा सकता है।

जे० कृष्णमूर्ति जी माध्यमिक शिक्षा के महत्व के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के मध्य की शिक्षा है। यह एक ऐसी कड़ी है जो दोनों को जोड़ने का कार्य करती है। यह कड़ी है जो दोनों को जोड़ने का कार्य करती है। यह कड़ी अपने में पूर्ण इकाई है जहाँ से बच्चों के निर्माण की शिक्षा शुरू होती है यहाँ जीवन के क्षेत्रों का निर्धारण होता है। व्यक्ति अपने रुचि, अभिक्षता, सृजनता आदि के द्वारा शिक्षा ग्रहण करना चाहता है। कृष्णमूर्ति जी पुनः कहते हैं कि शिक्षा केवल व्यक्ति के विकास एवं परिपूर्णता का ही माध्यम नहीं है वरन् उसका संबंध उस सम्पूर्ण भैतिक और सामाजिक कार्यक्रम से भी है जिसमें व्यक्ति जीवन-यापन करता है, यदि अधिकतर लोग निर्धन हों और अनुकूल वातावरण में रहते हों तो शिक्षा निश्चय की ऐसी होनी चाहिए कि उससे निर्धनता दूर हो और वातावरण में सुधार हो। माध्यमिक शिक्षा गतिशील और प्रभावपूर्ण तभी हो सकती है जब इसका संबंध हमारे सम्पूर्ण जीवन-आर्थिक, सौन्दर्यात्मक और आध्यात्मिक जीवन से हो और हमारे विद्यालय विविध अनुभवों के सजीव बन्धनों से समाज के साथ घनिष्ठता पूर्वक सम्बन्ध हो। हमारे सि(न्त एवं व्यवहार में अब तक जो खाई बनी हुई है उसकी तरफ ध्यान दिलाते हुए जे० कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि मुझे ऐसा लगता है कि हम कथनी तथा पुस्तकीय बातों के बहुत अधिक शौकीन हैं लेकिन व्यवहार में कुछ दूसरा ही होता है। अतः माध्यमिक स्तर हमारे उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए जिससे बालकों को सही दिशा की ओर उन्मुख किया जा सके।

जे0 कृष्णमूर्ति जी माध्यमिक शिक्षा के महत्व को देखते हुए उसके निम्न उद्देश्य निर्धारित करने का प्रयास किए हैं—

- 1 बच्चों का अपने स्वास्थ्य की देखभाल करने एवं उसमें विकास करने में प्रशिक्षित करना ।
- 1 बालकों को विभिन्न विषयों का ज्ञान कराना, उन्हें सोचने, विचारने और निर्णय लेने में दक्ष करना ।
- 1 बालकों का समाजीकरण करना उन्हें आवश्यक सामाजिक परिवर्तन करने हेतु तैयार करना ।
- 1 बालकों को देश विदेश की विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान कराना तथा उनमें सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना ।
- 1 बालकों को उनकी रुचि, योग्यता एवं आवश्यकतानुसार किसी शारीरिक श्रम कार्य को बेझिझक करने की ओर प्रवृत्त करना ।
- 1 बालकों को राष्ट्रीय लक्ष्यों के लिए जागरूक करना, उनमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति, राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव का विकास करना ।
- 1 बालकों को संसार के मुख्य धर्मों का सामान्य ज्ञान कराना और उनमें धार्मिक सहिष्णुता का विकास करना ।
- 1 बालकों में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करना और उन्हें तदनुकूल आचरण की ओर प्रवृत्त करना, उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना ।

उपरोक्त के तदनुकूल पाठ्यक्रम का निर्माण करने की बात जे0 कृष्णमूर्ति जी ने कहा है । माध्यमिक स्तर पर सचेत एवं सावधान होना अति आवश्यक है इसमें राष्ट्र के लिए सुयोग्य एवं समर्पित व्यक्ति तैयार होंगे । जे0 कृष्णमूर्ति जी के दार्शनिक विचारों का प्रभाव

उनके भारत एवं विश्व में स्थापित शिक्षा केन्द्रों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है वे चाहते हैं कि समूचे विश्व में इसका प्रसार हो जिससे राष्ट्रीय साम्राज्यवाद, बाजारवाद, उपभोगवाद की अति पर विराम लग सके तथा समन्वित एवं समविकास के रास्ते पर चलकर सब बड़े आपसी सद्भाव के साथ।

जे० कृष्णमूर्ति जी के अनुसार विश्वविद्यालय के जो कृत्य होने चाहिए, उन लोगों पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। यह निश्चित है कि विद्यालय तकनीकी और व्यावसायिक कार्यकर्ताओं को तैयार करने का केन्द्र मात्र नहीं है और जब उसको इस प्रकार के कार्यकर्ता तैयार करने भी होते हैं, तो इसका मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक और प्रजातांत्रिक मूल्यों में होने वाली खाई को पाटना होना चाहिए और तकनीकी निपुणता का मानव के शिष्ट वृत्तियों से दृढ़ सम्बन्ध जोड़ना होना चाहिए। शिक्षा का मूल उद्देश्य तो लोगों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा देना मानव-आत्मा में विश्वास उपजाना, मानव की मानव के प्रति होने वाली निष्ठा की प्रशंसा करना होना चाहिए, भले ही ऐसे लोग संसार में विभिन्न क्षेत्रों के ही रहने वाले क्यों न हों। “जो व्यक्ति दर्शक की भाँति समय की बहती हुई धारा देखता है उसके मन में कटुताएँ उत्पन्न नहीं होती।” हमारे मस्तिष्क का प्रवेश ऐतिहासिक भौगोलिक और बौद्धिक क्षितिजों में कराकर विश्व विद्यालयों को हमारा दृष्टिकोण व्यापक बनाना चाहिए, जिससे हम अपनी या पराई समझी जाने वाली उन सभी बातों का यथार्थ मूल्यांकन कर सकें। समय-समय पर महापुरुषों ने मानव जाति के उपकार के लिए जो स्तुत्य कार्य किये हैं उनके प्रति भी विश्वविद्यालय आदर भाव जगा सकता है। जे० कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि विश्व विद्यालय का मूल उद्देश्य उत्तरोक्तर पीढ़ियों को एक में जोड़ने और उनके भूत की सुन्दर स्मृतियों तथा भविष्य संबंधी सुन्दर कल्पनाओं को समन्वित करना है। यह समन्वय जाति, धर्म और राष्ट्रीय सीमाओं को लॉघ कर ऊपर उठता है।

जे० कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि विश्वविद्यालयों का काम लोगों को निर्विकार भाव से सत्यपथ पर अग्रसर करना है और समाज तथा राजनीतिक एवं धार्मिक कट्टरपथियों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि व्यक्तियों पर दबाव डालना छोड़कर उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक विचार करने का अवसर दें। मानसिक स्वतंत्रता के अभाव में अन्य स्वतंत्रताओं का कोई विशेष महत्व नहीं है। हमें खेद पूर्वक कहना पड़ता है कि हमारे विश्व विद्यालयों को यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है या वे इसका ठीक प्रकार से उपयोग नहीं कर पाते। विश्वविद्यालयों का यह भी कर्तव्य होना चाहिए कि वह शक्ति को शाश्वत मूल्यों के प्रति श्रद्धा (वन बनाएं और आमयिक घटनाओं के प्रति हमें जागरूक रखे। विश्वविद्यालय को चाहिए कि वे व्यक्ति की आत्मा को सजीव बनाएं और राष्ट्र को चिन्तन बुद्धि प्रदान करें। विश्वविद्यालय तभी ऐसा कर सकते हैं जब उनके पास रचनात्मक व्यक्तित्व हों, विद्या के पण्डित हो और आत्मा के प्रवक्ता हों। महान मस्तिष्क अपने प्रकाश से हमें बदल देते हैं। किसी शिक्षा तंत्र की विशिष्टता इसी में है कि वह किस बात पर अधिक जोर देता है। अतः उच्च शिक्षा के उद्देश्य निम्न रूपों में हो सकते हैं –

- 1 ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं मानसिक दृष्टि से प्रबल हो।
- 1 व्यक्तियों के आनुवंशिक गुणों को ज्ञात कर उनका विकास करना।
- 1 ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ हो और समाज सुधार के कार्यों में सहयोग दे सकें।
- 1 ऐसे नवयुवक का निर्माण करना जो अपनी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करे उसमें योगदान दें।
- 1 युवकों को राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिए तैयार करना।
- 1 युवकों को नए ज्ञान की खोज करने तथा सत्य की पहिचान करने योग्य बनाना।

- 1 ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो राजनीति, प्रशासन, व्यवसाय, उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में नेतृत्व कर सकें।
- 1 विद्यार्थियों का इस प्रकार से निर्माण करना कि ये प्रजातांत्रिक मूल्यों समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व और न्याय का संरक्षण कर सकें।
- 1 विद्यार्थियों में विश्व बन्धुत्व और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव का विकास करना।

वर्तमान समय में जे० कृष्णमूर्ति के दर्शन की प्रासंगिकता इस बात से है कि विश्वविद्यालय अपासंगिक होते चहे हैं अतः जे० कृष्णमूर्ति के उद्देश्यों को लागू कर उन्हें पुनः प्रासंगिक बनाया जा सकता है उनकी प्रतिष्ठा पुनः वापस आ सकती है। जिससे राष्ट्र को अपेक्षित व्यक्ति प्राप्त हो सकें।

वर्तमान समय में विश्व के तमाम क्षेत्रों से विकास की आवाज आ रही है। विकास का मुख्य आधार शिक्षा को माना जा सकता है क्योंकि शिक्षा द्वारा मानव प्रयत्नों के द्वारा सार्थक विश्वसनीयता बनाये हुए हैं। जे० कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि विकास के मुख्य आधार बालक का सर्वांगीण विकास शिक्षा द्वारा होता है। राष्ट्रीय लक्ष्य को ध्यान में रखकर बालक का विकास किया जाता है। अतः सर्व प्रथम इस बार पर जोर दिया जाना चाहिए कि बालक की तैयारी ठीक ढंग से हुई है या नहीं। इस संबंध में कृष्णमूर्ति जी कहना है कि जन्म से सात वर्ष तक शिशुकाल को पूर्णतया शारीरिक विकास का काल होना चाहिए जिसमें बालक को नियमित स्वतंत्रता दी जाय, जिससे वह अपने विभिन्न अंगों, मांसपेशियों व स्नायुतंत्रों का उचित विकास कर सके। यह कार्य घर पर माता पिता एवं नर्सरी स्कूलों में शिक्षकों द्वारा किया जाना चाहिए। बालक की गामक क्रियाओं के द्वारा मांस पेशियों अंगुलियों पर पूर्ण नियंत्रण कराना चाहिए। पुनः बालक की रुचि, अभिक्षमता, अभिवृत्ति एवं मानसिक स्तर तथा सृजनात्मक क्षमता के आधार पर बालका को शिक्षा को ग्रहण करने

युक्त बनाया जाना चाहिए, इसके लिए उसके संवेदनाओं एवं प्रत्यक्षीकरण तथा जिज्ञासाओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता महसूस की जाती है।